॥ श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ॥

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः॥

श्यामविन्दुमहिमा
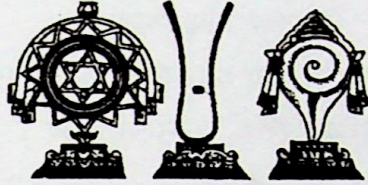
॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

श्यामविन्दुमहिमा

प्रकाशक--

विद्वत्परिषद्

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ

सलेमाबाद, पुष्करक्षेत्र, किशनगढ जि. अजमेर (राज०)

वैशाख शुक्ल ३ मंगलवार, अक्षय तृतीया

दिनांक २४/४/२०१२

वि० सं० २०६९ श्रीनिम्बार्काब्द ५१०८

पुस्तक प्राप्ति स्थान--

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

फोन नं० - ०१४६७ -२२७८३१

द्वितीयावृत्ति--२०००

मुद्रक--

श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

न्यौछावर

पाँच रुपये

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य-समुपदिष्ट
वैष्णव पञ्चसंस्कारों में-
श्यामविन्दुमहिमा

श्रुति-स्मृति-पुराणादि धर्म ग्रन्थों में वैष्णव पञ्च संस्कारों का बड़ा महत्व है। जो विप्रादि वैष्णववृन्द पञ्चसंस्कारों को अपने सद्गुरुदेव द्वारा वैष्णवी मन्त्र दीक्षा प्राप्त करते हैं, यथार्थ में वे परम सौभाग्यशाली हैं।

अनादि सनातन वैदिक श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय जिसके आद्याचार्य श्रीसुदर्शनचक्रावतार जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य हैं जिनके द्वारा वेद-पुराणादि शास्त्र सिद्धान्तानुसार वैष्णवी दीक्षा काल में पञ्च संस्कारों का प्रतिपादन हुआ है। ये पञ्च संस्कार निम्न प्रकार से वर्णित हुए है--

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः।
अमी हि पञ्चसंस्काराः परमैकान्तहेतवः।।

(श्रीनारद पञ्चरात्र एवं पद्मपुराण)

शंख[१]-चक्र-उर्ध्वपुण्ड्र तिलक[२]-नामकरण[३]-तुलसी कण्ठी धारण[४]-मन्त्रदीक्षा[५], ये पञ्चसंस्कार परम महत्वपूर्ण है।

ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमालाः
ये वाहूमूलपरिचिह्नितशंखचक्राः।
ये वा ललाटपटले लसदूर्ध्वपुण्ड्राः

ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ।।

जिनके कण्ठप्रदेश में तुलसी की कण्ठी अथवा कमल के बीजों की माला धारण की हुई है और जिनके उभय वाहुओं पर शंख-चक्र चिह्न अङ्कित है तथा जिनके ललाट पर उर्ध्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित है ऐसे वे वैष्णव इस जगत् को शीघ्र ही पवित्र करते हैं।

वस्तुतः इन वैष्णव पञ्चसंस्कारों की बड़ी महत्ता है। इनमें क्रमशः प्रथम शंख-चक्र धारण विषयक शास्त्रीय यह उद्धरण मननीय है--

गोपीचन्दनमृत्स्नाभि-र्लिखितो यस्य विग्रहः ।
शंख-चक्रादिपद्मं वा देहे तत्र वसेद्धरिः ।।

(पद्मपुराण)

गोपीचन्दन से जिसके उभय भुजाओं पर शंख-चक्र के चिह्न अङ्कित है उस वैष्णव के शरीर में श्रीहरि का निवास है।

इसी प्रकार गोपीचन्दन से जो वैष्णव भगवद्भक्त उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करता है उसके सम्बन्ध में यह शास्त्रीय वचन अवधेय है।

यो मृत्तिकां द्वारवतीसमुद्भवां
करे समादाय ललाटके बुधः ।
करोति नित्यं त्वथ चोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।
क्रियाफलं कोटिगुणं सदा भवेत् ।।१ ।।

(गरुडपुराणे श्रीनारदोक्तिः)

ब्राह्मणानां तु सर्वेषां वैदिकानामुत्तमम् ।
गोपीचन्दनवारीस्थमुर्ध्वपुण्ड्रं विधीयते ।।२ ।।

(वासुदेवोपनिषदि)

द्वारकाधाम में प्राप्त होने वाला गोपीचन्दन उसे जो विद्वान् अपनी हाथ की हथेली में लेकर जल से घिस कर उससे अपने ललाट पर प्रतिदिन उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करे जिससे उसके शुभ कार्य का कोटि गुण फल सदा प्राप्त होता है ।।१ ।।

जो वैदिक ब्राह्मण तथा सभी वैष्णव भक्तजन गोपीचन्दन को जल से घिस कर उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करें जिसका विधान शास्त्रों में वर्णित है ।।२ ।।

''शाडिल्यस्मृति'' के अनुसार ''नाम कुर्याच्च वैष्णवम्'' इस सिद्धान्त से वैष्णव परक नामकरण संस्कार करे।

''गरुडपुराण'' में वर्णितानुसार वैष्णवजन तुलसी कण्ठी धारण करे यथा--

तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् ।
पितृणां देवतानां च कृतं कोटिगुणं कलौ ।।

तुलसी काष्ठ की माला अर्थात् कण्ठी से सुशोभित वैष्णव जन अपने पितृजन एवं देवताओं के निमित्त जो भी सत्कर्म करे उसका कलियुग में कोटिगुणा अधिक फल प्राप्त होता है।

''प्रह्लादसंहिता'' में--

कण्ठलग्ना तु या माला सा तु कण्ठी प्रकीर्तिता ।
तस्या धारणमवश्यं कर्त्तव्यं द्विजसत्तमैः ।।

कण्ठ प्रदेश में जो तुलसी काष्ठ की माला धारण की जाती है वही माला कण्ठी नाम से कही जाती है और उसको वैष्णव विप्रजनों को अवश्य धारण करनी चाहिए।

इस प्रकार चार वैष्णव संस्कारों का यहाँ वर्णन हुआ। अब पाँचवा संस्कार मन्त्रराज दीक्षा का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है, यथा--

नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः ।
आविर्भूतः कुमारैस्तु गृहीत्वा नारदाय च ।।
उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु ।
एवं परम्पराप्राप्तो मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः ।।

(श्रीविष्णुयामले)

श्रीहंस भगवान् ने सर्वप्रथम अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्रराज की दीक्षा महर्षिवर्य श्रीसनकादिकों को और इन्होंने देवर्षिप्रवर श्रीनारदजी को और देवर्षिवर्य ने श्रीनिम्बार्क भगवान् को दीक्षा प्रदान की इस प्रकार यह परम्परागत प्राप्त अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्रराज है।

पञ्चम वैष्णवी दीक्षा संस्कार में प्रथम श्रीशरणागति मुकुन्दमन्त्र दिया जाता है और पश्चात् उसी समय पञ्चपदीविद्यात्मक अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्रराज भी दिये जाने का विधान है। यह मन्त्रदीक्षा श्रीसद्गुरुदेव द्वारा प्राप्त की जाती है। योग्यता एवं अवस्थानुसार श्रीशरणागति मुकुन्दमन्त्र किंवा अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्रराज की दीक्षा का विधि क्रम है।

उपर्युक्त उभय मन्त्रों पर सुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य चरणों ने ग्रन्थद्वय का प्रणयन किया है। उनमें श्रीशरणागति मुकुन्दमन्त्र पर ''श्रीमन्त्ररहस्यषोडशी'' एवं श्रीगोपालमन्त्रराज पर ''श्रीप्रपन्नकल्पवल्ली'' है। इन उभय ग्रन्थों पर पूर्वाचार्य श्रीसुन्दरभट्टाचार्यजी महाराज ने विस्तृत व्याख्यायें की हैं जो विद्वज्जनों के लिए परम मननीय है।

वैष्णव पञ्च संस्कारों में गोपीचन्दन से अपने ललाट पर एवं इसके अतिरिक्त शरीर के अन्य एकादश अङ्गों पर तिलक स्वरूप धारण का शास्त्रीय विधान है, प्रत्येक अङ्गों पर भिन्न-भिन्न मन्त्रों से मानसिक उच्चारण के साथ तिलक किये जाते हैं। जिनका उल्लेख ''श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय'' श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से प्रकाशित ''सर्वेश्वर सन्ध्या'', ''वैष्णवसन्ध्या'', नित्य-स्तुति-संकीर्तन'' ''तुलसी-श्यामश्री एवं गोपीचन्दन माहात्म्य''आदि ग्रन्थों से अवगत करें।

गोपीचन्दन से ही तिलक धारण का विशेष नियम है और तिलक के मध्य भाग में अर्थात् नेत्रों के दोनों भ्रुवों के मध्य भाग में ''श्यामविन्दु'' धारण का विधान है, अतः सभी वैष्णव सन्त भावुक भक्तजनों को इसी नियमानुसार तिलक के मध्यभाग में श्यामविन्दु अवश्य धारण करें।

इसी दृष्टिकोण से ''श्यामविन्दु महिमा'' लघुरूपात्मक ग्रन्थ का प्रकाशन कराया गया है। इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन श्रीवृन्दावनधाम से विरक्त वैष्णव फलाहारी श्रीनन्दलालदासजी

महात्मा ने दिनांक १२/५/१९३३ ईस्वी में कराया था अब वे प्रतियाँ दुर्लभ होगई अतः अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज ने कृपा कर इस ग्रन्थ का पुनर्मुद्रण कराया है जिससे सभी सन्त, विद्वज्जन वैष्णव भावुक भक्त महानुभाव परम लाभान्वित होंगे।

''श्यामविन्दु महिमा'' ग्रन्थ का हिन्दी भावार्थ सहित यथावत् प्रकाशन कराया गया है। यह प्रस्तुत ग्रन्थ संक्षिप्त होते हुए भी परम उपादेय है। इसके मनन अनुशीलन से श्यामविन्दु महिमा का सरलता से परिज्ञान होगा अतः सभी महानुभाव इसे प्राप्त कर अपने उपयोग में लें। श्रीसर्वेश्वर राधामाधव भगवान् सभी का मङ्गल करें इसी भावना के साथ लेखनी को विराम देना उचित समझता हूँ।

वैशाख शुक्ल ३ मंगलवार, अक्षय तृतीया महोत्सव
वि० सं० २०६९, दिनांक २४/४/२०१२

विनयावनत-
विजयशङ्कर शास्त्री
प्राध्यापक
श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय
अ. भा. जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ
(सलेमाबाद) किशनगढ, अजमेर (राजस्थान)

❊ श्यामविन्दु महिमा ❊

हरेः पादाकृतिधार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं विधानतः।
मध्यच्छिद्रेण संयुक्तं तद्धि वै हरिमन्दिरम्॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य हरिपादाकारत्ववोधिका यजुर्वेदीय-हिरण्यकेशिशाखास्था श्रुतिर्मानम्।

यजुर्वेद की हिरण्यकेशि शाखा में भगवान् के चरणारविन्द के समान ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना श्रुति प्रतिपादन करती है। जैसा कि--

तथा च श्रुतिः। हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्यच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान् भवति स मुक्तिभाग्भवतीति। अस्या अर्थः।

यो हर्य्युपासकजन ऊर्ध्वपुण्ड्रं हरेः पादाकृतिं धारयति, स परस्य प्रियो भवति। पर प्रियत्वे हेतुमाह "आत्मनो हिताय" इति। आत्मनः केशवादिनाम्नः परमेश्वरस्य स्थापनरूपाय हितायेत्येव व्याख्याने तु पुनरुक्तिः स्यात् परस्यप्रियो भवति इत्यादिनैव स्वहितस्योक्तत्वादिति श्रुत्यर्थः पुण्ड्रे हरिस्थापनं क्व भवेदित्याकांक्षायां पुण्ड्रं विशिनष्टि मध्यच्छिद्रमिति। मध्यच्छिद्राभावे श्रिया सह हरिस्थितिः पुण्ड्रे न भवेत्॥

जो भगवद्भक्त भगवान् के चरण स्वरूप-ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह भगवान् को अतिप्रिय लगता है।

भगवत्प्रिय होने में कारण बतलाते हैं-आत्मनि इत्यादि। केशवादि नामक परमेश्वर का स्थापन रूप हित के लिये तिलक में हरिस्थापन कहाँ होना चाहिए इस शंका के होने पर तिलक का विशेषण देते हैं कि तिलक के बीच में यदि छिद्र का अभाव रहे तो तिलक में श्रीजी के साथ भगवत्स्थिति नहीं होती।

तदुक्तं ब्रह्मपुराणे--

निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः। स हि तत्र स्थितं विष्णुं लक्ष्मीं चैव व्यपोहति। इति। इत्थं हरिपादाकृतिपुण्ड्रस्यैव हरिमन्दिरत्वं श्रुत्योक्तम्। हरिमन्दिरे हरिस्थाने मुक्ताकारं 'विन्दुं' धारयेत्।

वही ब्रह्मपुराण में कहा है--निरन्तरालमित्यादि। अर्थात् जो ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक वीच में जगह खाली छोड़कर लगा लेता है वह त्रिवर्णों में नीच है और यहाँ स्थित भगवान् एवं लक्ष्मीजी की अवज्ञा करता है इस प्रकार भगवच्चरणरूप जो तिलक है वही भगवान् का मन्दिर है यह श्रुति ने कहा है। ''आत्मनोहिताय'' इसकी ही यदि व्याख्या की जावे तब तो पुनरुक्ति होजाती है क्योंकि ''परस्य प्रियोभवति'' इत्यादि से ही स्वहित कह दिया गया है। यही श्रुति का अर्थ है। हरि मन्दिर-भगवान् के स्थान में मोती के समान विन्दु धारण करें।

तदुक्तं पाद्मेः--

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्या न्मध्ये शून्यं प्रकल्पयेत्, इति। शून्यम्-विन्दु मिति ज्योतिः शास्त्रे प्रसिद्धम्।

वही ''पद्मपुराण'' में कहा है ऊर्ध्वपुण्ड्रमित्यादि। मृत्तिका से ऊर्ध्वपुण्ड्र लगावे और बीच में शून्य-विन्दु बनाए। शून्य शब्द ज्योतिः शास्त्र में विन्दु नाम से प्रसिद्ध है ही।

गोपीचन्दनादिना पुण्ड्राख्ये हरिमन्दिरे रमासहितस्य विष्णो र्विन्दुरूपेण स्थापनं स्पष्टमुक्तं 'कूर्म पुराणे' 'कञ्जाकारं समं मध्ये धारयेद्हरिमन्दिरे'। इति। सममित्यत्र-मया-रमया सह वर्तते इति सम स्तं रमासहितं भगवन्तं पुण्ड्राख्ये-हरिमन्दिरे धारयेत्।

'कूर्म पुराण' में गोपीचन्दनादि से पुण्ड्र नामक हरि मन्दिर में लक्ष्मी युक्त विष्णु भगवान् का स्थापन विन्दु रूप से स्पष्ट वतलाया है--कञ्जाकारमित्यादि। किंवा-लक्ष्मी सहित कमल नेत्र भगवान् को पुण्ड्राख्य हरि स्थान में धारण करना चाहिये।

ननु-एकेन विन्दुनोभयधारणं कथं संगच्छेत इत्य-त्राह-कञ्जाकारमिति। कञ्जवदाकारो यस्य सः कञ्जाकारः सूक्ष्मशालग्रामस्तद्रूपं विन्दुं धारयेदित्यर्थः। एक एव शाल-ग्रामो यथा रमासहितो विष्णुर्भवति तथैकविन्दुरितिभावः।

शंका होती है कि एक विन्दु से दोनों का धारण कैसे हो सकता है ? उसका उत्तर देते हैं कि कमल रूपी नेत्र के समान हैं

गोल-गोल आकार जिसका ऐसे छोटे से शालग्राम के समान विन्दु लगावे। जैसे लक्ष्मी सहित विष्णु भगवान् एक होते हैं वैसे ही एक विन्दु होनी चाहिए।

श्रीनारदोऽप्याह-'भ्रुवोर्मुक्ताकृतिं मध्ये धारयेद्धरिमन्दिरे' इति। श्रुतिश्चाह समायुक्तं तिलकम्, इति। अतएव पुण्ड्रमध्ये विन्दुधारणं हरिमूर्तिधारणं-विष्णुस्थापनं करोमीतिदेवप्राधान्यसूचकं वाक्यं वक्तव्यम्, इति।

श्रीनारदजी ने भी कहा है-भ्रुवोर्मुक्ताकृतिमित्यादि ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक में दोनों भ्रुकुटियों के मध्य में मोती के समान एक विन्दु अवश्य लगानी चाहिये। और वेद भी कहता है-समेत्यादि। कि लक्ष्मी विन्दु सहित तिलक होना चाहिये। इसीलिये तिलक में विन्दु धारण जो है यही मानो मैं विष्णु भगवान् की स्थापना करता हूँ ऐसा देवता की प्रधानता सूचक वाक्य कहना चाहिये।

देव्या विन्द्वात्मकदेवसाहित्येनवर्तमानायास्तत्रैवान्तर्भावात्। देवस्यप्राधान्यं देव्याः साहित्यमात्रं च पद्मपुराणेऽप्युक्तम् यथा 'ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे। सान्तराले समासीनो हरिस्तत्र श्रियासह।' इति। सुमनोहर इत्युक्ति दर्पणेन सुशोभनमूर्ध्वपुण्ड्रं कर्तव्यमिति सूचयति।

विन्दु स्वरूप वाले भगवान् के साथ रहने वाली लक्ष्मीजी का भी उसी में अन्तर्भाव हो जाता है। भगवान् की प्रधानता एवं श्रीजी का साथ में होना 'पद्मपुराण' में भी कहा है जैसे-ऊर्ध्वपुण्ड्र-

स्येत्यादि। अति सुन्दर एवं सुस्पष्ट, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक के बीच जो रिक्त स्थान है उसमें श्रीजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण विराजते हैं। इसमें सुमनोहर शब्द से यह सूचित होता है कि दर्पण (शीशे) से अत्यन्त सुन्दर शोभादायक ऊर्ध्वपुण्ड्र करना चाहिये।

माशब्देनैश्वर्याधिष्ठात्री श्रीशब्देन लीलाधिष्ठात्री चोर्ध्वपुण्ड्रमध्यगविन्द्वाकारविष्णुसहचरीज्ञेया। देवीद्वयश्च 'श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यौ' इतिश्रुत्या दर्शितम्। देवीनिरूपण-विस्तरस्तु वेदान्तरत्न मञ्जूषादौ द्रष्टव्यः।

मा शब्द से ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री और श्रीशब्द से लीलाधिष्ठात्री, ऊर्ध्वपुण्ड्र मध्यगत विन्दु स्वरूप भगवान् की सहचरी समझनी। "श्रीश्चते" इत्यादि श्रुति ने भी दो देवी बतलाई हैं। देवी का विस्तार पूर्वक वर्णन तो वेदान्त रत्नमञ्जूषादि ग्रन्थों में देख लेना।

कुमारतंत्रेप्रमाणानि यथा--

विन्दूद्भवं वद विभो ! श्रोतुः कौतूहलं मम।
को वासः कुत उत्पन्नस्तत्प्रभावश्च कः शिव! ।।१।।

इस विन्दु विषयक प्रमाण कुमार तन्त्र में बहुत है। जैसे विन्दूद्भवमित्यादि-- हे शिव! मुझे सुनने का बडा उत्साह है सो आप इस विन्दु की उत्पत्ति को बतलावें और इसका रहने का स्थान, एवं कहाँ से उत्पत्ति है तथा इसका क्या प्रभाव है! ये सब बातें कहें॥१॥

शिवउवाच-

द्विभुजास्वपि गोलोके बभ्राम रासमण्डले ।
तन्मण्डलस्य मध्यस्थो ननाद नूपुरोद्भवः ।।२ ।।

महादेवजी ने कहा--द्विभुजास्वपीत्यादि। कि वह भगवान् के नूपुरों से पैदा हुआ विन्दु गोलोकस्थ दो भुजाओं वाली गोपियों के रासमण्डल में भ्रमण करने लगा और उस मण्डल में स्थित होकर अव्यक्त शब्द करने लगा।

अकारश्च उकारश्च मकार इति ब्याहृतः ।
विन्दुप्रभावमात्रेण-ओङ्कारशब्द उच्यते ।।३ ।।

अकार, उकार, मकार यह तीनों ही शब्द विन्दु के प्रभाव से ओङ्कार शब्द कहलाता हैं।

भूर्लोकश्च भुव श्चैव स्वर्लोकश्च ततः परः ।
विना ओङ्गारमंत्रेण सर्वकार्यं हि निष्फलम् ।।४ ।।

उसके वाद भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक हैं पर ओंकार मन्त्र के बिना सब कार्य फल शून्य ही है।

आरभ्य नासिकामूलं ललाटान्तं लिखेन्मृदम् ।
नासिकायास्त्रयो भागा नासामूलं प्रचक्षते ।।५ ।।

नासिका के मूल से लेकर ललाट पर्य्यन्त गोपीचन्दन रूपमृत्तिका का तिलक लगावै नासिका के तीन भागों को महर्षि लोग नासामूल कहते हैं।

श्यामविन्दुरिति प्रोक्त श्चक्षुर्मध्ये भ्रुवि स्थितः ।

तस्य दर्शनमात्रेण महापातकनाशनम् ।।६ ।।

नेत्रों के मध्यभाग भ्रुकुटियों में स्थित श्याम-कृष्ण विन्दु बतलाई है उसके दर्शन करने से ही बड़े-बड़े पाप दूर हो जाते हैं।

कृष्णपदोर्ध्वरेखा या सोर्ध्वपुण्ड्रं प्रकीर्तितम् ।
तस्य मध्ये तु संस्थाप्य श्यामविन्दुं विशेषतः ।।७ ।।

ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों की ऊर्ध्वरेखा है उस तिलक के मध्य में विशेष रूप से श्याम विन्दु धारण करे।

यद् विन्दुधारणाद् ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् ।
विन्दो श्च धारणाच्छम्भुः संहतौ सर्वतत्त्ववित् ।।८ ।।

जिस विन्दु को धारण करने से ब्रह्माजी तो सृष्टि रच देते हैं और महादेवजी सब तत्त्वों को जानते हुए संहार करते हैं।

विन्दोश्च धारणाद् दुर्गा महिषासुरमर्दिनी ।
तथा तद्धारणाच्छक्रः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात् ।।९ ।।

तथा विन्दु धारण से भगवती दुर्गा ने महिषासुर को मार गिराया और उसके धारण करने से इन्द्र सब ऐश्वर्य को प्राप्त हुए।

विशेषमहिमा विन्दोर्न कश्चिद् वक्तुमर्हति ।
विन्दुप्रभावमात्रेण शेषोऽभुद्धरणीधरः ।।१० ।।

इस विन्दु की अधिक महिमा कोई कर ही नहीं सकता। विन्दु के प्रभाव से ही शेषनाग ने पृथ्वी को धारण किया।

ब्रह्माण्डपुराणेऽप्युक्तम्:--

श्यामविन्दुः सदा धार्यः कुण्डयुग्मसमुद्भवम् ।
पङ्कं सेवेत यो भक्त्या राधाकृष्णप्रियो हि सः ।।१ ।।

ब्रह्माण्ड पुराण में भी कहा है-श्यामविन्दुरित्यादि। श्यामविन्दु नित्य प्रति लगानी चाहिये, जो प्रेम से राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड की रज लगाता है वह राधाकृष्ण का प्रेम पात्र होता है॥१॥

हरिमन्दिरमध्ये तु श्यामविन्दु र्विधीयते ।
मृदो हि राधाकुण्डस्य श्यामकुण्डस्य वा मुने! ।।२ ।।

हरिमन्दिरेत्यादि। हे मुने ! राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड की रज की श्याम विन्दु पुण्ड्र के बीच में लगानी चाहिये ॥२॥

श्रीजगन्नाथपुरी (उडीसा) से कुछ दूरवर्ती स्थान पर कज्जलगिरि पर्वत है। श्यामविन्दु अधिकांश वहीं से प्राप्त की जाती है और उसका ही सर्वाधिक प्रचार भी है।

इति शुभम्भूयात्।